काश्मीरसुखमा

पण्डित श्रीधर पाठक विरचित

"यही स्वर्ग सुरलोक, यही सुरकानन सुन्दर
"यहि अमरन कौ ओक, यहीं कहुं बसत पुरन्दर"

KÁŚMÍRA-SUKHAMÁ

A descriptive poem on Kashmir

BY

PANDIT ŚRÍDHARA PÂTHAKA

Allahabad:

PRINTED AT THE INDIAN PRESS.

1904.

"पुरा सतीसरः कल्पारम्भात्प्रभृति भूरभूत्
कुक्षौ हिमाद्रेरर्णोभिः पूर्णा मन्वन्तराणि षट्
अथ वैवस्वतीयेऽस्मिन् प्राप्ते मन्वन्तरे सुरान्
द्रुहिणोपेन्द्ररुद्रादीनवतार्य प्रजासृजा
कश्यपेन तदन्तःस्थं घातयित्वा जलोद्भवम्
निर्ममे तत्सरो भूमौ कश्मीरा इति मण्डलम्"

"शारदामठमारभ्य कुंकुमाद्रितटांतकः
तावत्कश्मीरदेशःस्यात्पंचशद्योजनात्मकः"

"त्रिलोक्यां यानि तीर्थानि तानि काश्मीरमंडले
काश्मीरे यानि तीर्थानि तानि वैतस्तिके जले"

"सुबह दर बाग़े निशातो शाम दरबाग़े नसीम्
शालामारो लालाज़ारो सैरे कश्मीरस्तो बस्"

काश्मीरसुखमा ।

धनि धनि श्रीकश्मीर-धरनि मल-हरनि सुहावनि
धनि कश्यप-जस-धुजा, विश्वमोहिनि मनभावनि
धन्य आर्य्य-कुल-धर्म-पर्म-प्राचीन-पीठ-थल
धन्य सारदा-सवनि अवनि, त्रैलोक्य-पुन्य-फल
धन्य पुरातन प्रथित धाम, अभिराम अतुल-छवि
स्वर्ग-सहोदरि धरनि, बरनि हारे कोविद कवि

धन्य यहां की धूलि, धन्य नीरद, नभ, तारे
धन्य धवल हिमशृङ्ग, तुङ्ग, दुर्गम, दृग-प्यारे
धन्य नदी नदस्रोत, विमल गंगोद-गोत जल
सीतल सुखद समीर, वितस्ता-तीर स्वच्छ-थल
धनि उपवन, उद्यान, सुमन-सुरभित वनवीथी
खिलि रहीं चित्र विचित्र, प्रकृति के हाथनु चीती
धन्य सुथर गिरिचरन, सरित-निर्झर-रव-पूरित
लघु दीरघ तरु विहग-बोल, कोकिल कल कूजित
मृदुल, दूब-दल-रचित, कुसुम-भूषित, सुचि शाद्वल[1]
ललित-लतावलि-वलित, कलित, कमनीय, सलिल-थल
धनि सुखमा-सुख-मूल, सरित-सर-कूल मनोहर
धनि सागर-सम-तूल, विमल विस्तृत "डल वूलर[2]"

---

१ शाद्वल = हरी घास भूषित भूमि ।

२ वूलर डल, मानस बल, गंधर बल, और श्रीनगर का डल, ये यहां के कतिपय प्रसिद्ध झील और सरोवरों के नाम हैं । नगरी बल श्रीनगर के डल का एक भाग विशेष है । कश्मीरी भाषा में डल झील को कहते हैं ।

मानसरोवर-मान-हरन, सुन्दर "मानस बल"
धनि "गंधर बल", "गगरी बल", श्रीनगर स्वच्छ "डल"
एक एक सों सुघर अनेक सरोवर छाए
प्रकृति देवि निज-रूप-लखन, मनु मुकुर लगाए

धन्य यहां के सुजन धन्य नागरि मृगलोचनि
धनि पद्मिनि विधुवदनि, मदन-सद्मिनि-मद-मोचनि
धनि धनि औरहु जीव जिते जल, थल, नभचारी
जिन सों भइ कश्मीर धरनि छवि जग सों न्यारी

धन्य नगर श्रीनगर वितस्ता-कूलनि सोहै
पुलिन-भौन-प्रतिबिम्ब सलिल-सोभा मन मोहै
लसत "कदल[1]" पुल सप्त, चपल नौकागन डोलैं
रूपरासि नर नारि वारि बिच करत कलोलैं
"शेरगढ़ी[2]" नृपभौन सरित-तट सोहत सुन्दर
विज्जु-दीप-दुति निरखि स्वर्गपुरि दुरत पुरन्दर
हेमपत्रमय तत्र "गदाधर" जू हरि-मन्दिर
राजभवन-अवलम्बि, राजकुल कीर्ति-थम्ब थिर
गिरि ऊपर सों लगत नगर-छवि निपट निराली
वर्गाकृति घर बगर बिछे बहु सोभा-साली
सोहत सो चहुं ओर, सुघर घर-अवलि एक सी
बीच वितस्ता-धार सजत सुचि रजत-रेख सी

१ कदल शब्द सेतु वा पुल वाचक है।

२ शेरगढ़ी उस प्राकार का नाम है जिसमें महाराजा साहब के महल हैं।

धन्य "शारिका[1]" भवन, "हरीपर्वत" गढ़-मंडन
"दुध गंगा" सित अम्बु अंग-परसन श्रम-खंडन
धन्य "शंकराचार्य" परम पावन गिरिशेखर
"खीरभवानी" कुंड, धन्य "मार्तंड" पुन्यथर
धन्य तथा "वाराह मूल" कलि-कलुख-सूल-हर
मुनि-जन-मन-अनुकूल, सकल-अघ-उन्मूलन-कर
"अमरनाथ", सुचिगाथ, आदि शिव-तीरथ राजै
महामहिम हिमलिंग हिमाचल-कोखि विराजै

[सब तीर्थन कौ तीर्थ एक तहां महा-तीर्थ-थल
विलसत नगरी मध्य नाम सुचि "पुरुषयार वल"
मम इकन्त-आराध्य जहां श्रीचरन विराजैं
अखिल भुवन ब्रह्मांड विश्व के तीरथ लाजैं
श्री "मुकुन्द" गुरु-चरन सरन जिनकी मैं लीनी
परम्परा की प्रथा यथारथ अनुभव कीनी
"सुनमाला" गुनमाल अम्ब अम्बुज-पद ध्याऊं
जुगल चरन मनहरन सरन गहि सब सुख पाऊं]

धन्य राजप्रिय प्रजा, प्रजाप्रिय राज सुखारी
धनि पुनीत नृपनीति, प्रीतिपथ-पोषनहारी

---

१ शारिका देवी, शङ्कराचार्य, खीरभवानी, मार्तंड (क० मटन), वाराह मूल (क० बारामूला), अमरनाथ-ये सब प्रसिद्ध तीर्थ हैं।

दुध गंगा नदी है जो श्रीनगर के पश्चिम छोर पर वितस्ता में मिली है।

पुरुषयार या पुरुषयार-वल श्रीनगर का एक महल्ला है जहां पं० श्रीधर पाठक के तंत्र दीक्षा-गुरु शिव-लोक-वासी श्रीयुक्त पं० मुकुन्द साहब कौल का घर है।

श्रीमती सुनमाला पाठक जी की गुरुपत्नी का नाम है।

यवन आर्य विच न्याय-मध्य कछु भेद न दीसत
सोवत सुख की नींद सबै निज-नृपहि असीसत
धन्य भिन्न मत प्रजा मध्य यह भेद-अभावा
विमल न्याय, नय, सुमति, शील, बल, बुद्धि प्रभावा

धन्य डोगरा-भानुवंश-अवतंस अवनिपति
गोद्विज-कुल-प्रतिपाल, विकसि रही उज्जल कीरति
धन्य धर्मपति सुकृत-निरत, हरि-भक्त-धुरंधर
श्री राजर्षि प्रतापसिंह कश्मीर-पुरन्दर
जिन अतिसय सज्जनता कौ परिचय मोहि दीनौ
हित सों बोलि सनेह सहित सन्मानित कीनौ

प्रकृति यहां एकान्त बैठि निज रूप संवारति
पल पल पलटति भेस छनिक छवि छिन छिन धारति
विमल-अम्बु-सर मुकुरन महं मुख-बिम्ब निहारति
अपनी छवि पै मोहि आपही तन मन वारति
सजति, सजावति, सरसति, हरसति, दरसति प्यारी
बहुरि सराहति भाग पाय सुठि चित्तरसारी
विहरति विविध-विलास-भरी जोबन के मद सनि
ललकति, किलकति, पुलकति, निरखति, थिरकति, बनि ठनि
मधुर मंजु छवि पुंज छटा छिरकति बन कुंजन
चितवति, रिझवति, हसति, डसति, मुसिक्याति, हरति मन

यहँ सुरूप सिंगार रूप धरि धरि बहु भांतिन
सर, सरिता, गिरि, शिखर, गगन, गह्वर, तरुवर, तृन
पूरन करिबे काज चाहना अपने मन की
किंकरता करि रह्यौ प्रकृति-पंकज-चरनन की

चहुं दिसि हिम गिरि-सिखर, हीर-मनि मौलि-अवलि मनु
स्रवत सरित-सित-धार, द्रवत सोइ चन्द्रहार जनु
फल फूलन छवि छटा छई जो वन उपवन की
उदित भई मनु अवनि-उदर सों, निधि रतनन की
तुहिन-सिखर, सरिता, सर, विपिनन की मिलि सो छवि
छई मंडलाकार, रही चारहुं दिसि यों फवि
मानहु मनिमय मौलि-माल-आकृति अलबेली
बांधी विधि अनमोल गोल भारत-सिर सेली

अर्द्ध चन्द्र सम सिखर-स्रैनि कहुं यों छवि छाई
मानहुं चन्दन-धौरि, गौरि-गुरु, खौरि लगाई
पुनि तिन स्रैनिन बीच वितस्ता रेख जु राजति
वैष्णव "श्री" अरु शिव-त्रिशूल की आभा भ्राजति

हिम स्रैनिन सों घिरयौ अद्रिमंडल यह रूरौ
सोहत द्रोनाकार सृष्टि-सुखमा-सुख-पूरौ
बहु विधि दृश्य अदृश्य कला कौशल सों छायौ
रक्षन निधि नैसर्ग मनहु विधि दुर्ग बनायौ
अथवा विमल बटोर विश्वकी निखिल निकाई
गुप्त राखिवे काज सुदृढ़ सन्दूक बनाई
कै यह जादूभरी विश्वबाजीगरथैली
खेलत में खुलि परी शैल के सिर पै फैली
पुरुष प्रकृति कौं किधौं जबै जोवन रस आयौ
प्रेम-केलि रस-रेलि करन रँग महल सजायौ
खिली प्रकृति-पटरानी के महलन फुलवारी
खुली धरी कै भरी तासु सिंगार-पिटारी

कै यह विकसित ब्रह्म-वाटिका की कोउ क्यारी
योगिराज ने यहां योग बल खैंचि उतारी
कै सामग्रीसहित भैरवीचक्र मझारी
परिकल्पित करि धरी शक्तिपूजन की थारी
किधौं चढ़ायो धाता ने भारत के मस्तक
मायामालिनि-रच्यौ चारु कुसुमन कौ गुच्छक
काम धेनु कै रवि-हय की खुर-छाप सलौनी
कै वसुधा पै सुधा-धार-ब्रह्मद्रव-द्रौनी
परमपुरुष की पटरानी माया कौ स्यन्दन
मंडप छत्र उतारि धरयौ, उतरयौ कै नन्दन
कै जब लै शिव चले दक्ष तनया के अंगन
गिरि शृङ्गन पै गिरयौ प्रिया के कर कौ कंगन[1]
विष्णु-नाभि तें उग्यौ सुन्यौ जो कमल सहसदल
कै यह सोई सुभग स्वयम्भू कौ सुजन्म थल
प्रकृति नटी कौ पटोरहित प्रगस्यौ नाटक-घर
कै शिव-तंत्र सटीक खुल्यौ विलसत टिखटी पर
कै त्रैलोक्य-विभूति-भरित अवधूत-कमंडल
कै तप-पुंज-प्रसूत विश्व-शोभा-श्री मंडल

सुरपुर अरु सुरकानन की सुठि सुन्दरताई
त्रिभुवनमोहनकरनि कविनु बहु बरनि सुनाई
सो सब कानन सुनी, किन्तु नैनन नहिं देखी
जहं तहं पोथिन पढ़ी, पैसु परतच्छ न पेखी
सो कवियन जो कही कलित सुरलोकनिकाई
याहीकों अवलोकि एक कल्पना बनाई

---

१ अर्थात्, गिरिशृंगन गिरि भयौ तासु र[illegible] मनि कंगन।

सुरपुर अरु कश्मीर दोउन में को है सुन्दर
को सोभा कै। भैान रूप को कैान समुन्दर?
काकैां उपमा उचित दैन दोउन में काकी
याकैां सुरपुर की अथवा सुरपुर कैां याकी?
याकैां उपमा याही की मोहि देत सुहावै
या सम दूजो ठैार सृष्टि में दृष्टि न आवै
यही स्वर्ग सुरलोक, यही सुरकानन सुन्दर
यहिं अमरन कैा ओक[1], यहीं कहुं बसत पुरन्दर

सो श्रीधर-दृग बसी प्रेम-अम्बुद-रस-दैनी
पुन्यअवनि सुखसवनि, अलैाकिक-सोभा-स्त्रैनी
पैसु यथारथ महिमा नहिं मोहि शक्ति बखानन
सहसा नहिं कहि सकहिं रुकहिं सहसन सहसानन
कविगन कैां कल्पना-कल्प-तरु, काम-धेनु सो
मुनियन कैां तपधाम, ब्रह्म-आनन्द-ऐनु सो
रसिकन कैां रसथान, प्रान, सर्वस, जीवन, धन
प्रकृति प्रेमिनी कैां सुकेलि-क्रीड़ा-कलोल-वन

ताहि रसिकवर सुजन अवसि अवलोकन कीजै
मम समान मन-मुग्ध ललकि लोचन-फल लीजै

(११-११-०४)

---

(१) ओक=निवासस्थान, घर।

शिमला प्रेक्षणम्

समलंकृतशोभाढ्यां जनसंघसमाकुलाम्
पर्वतांकेस्थितां पुण्यां पश्यैतां शिमलापुरीम्
सौधसंघातसङ्कीर्णां विस्तीर्णां बहुशोदिशि
निशि वा वा दिवा दिव्यां द्रष्टव्यां द्रष्टुमर्हसि
हिमलालित्यबहुलां विमलां शबलोपलाम्
धवलालयलावण्यां पश्यैतां शिमलाश्रियम्
बिभ्रतीमभ्रकौशेयं नैशदीपसुमच्छविम्
स्वच्छवेशविधौ दक्षां पश्यैतां शिमलावधूम्
सुदूरतुहिनोत्तुङ्गश्टङ्गालिसमवेक्षिताम्
ग्रामपूतात्मता मेता मवेहि शिमलातनुम्
मन्दिरांगेष्वमन्देषु चन्दिरांशुचमत्कृताम्
अवश्यं नैशिकीमश्य शारदीं शिमलाद्युतिम्
स्रोतस्सञ्चारवैपुल्यां कुल्याम्बुकल "मर्मराम्"
पुष्पोद्गमपराम्पश्य वासन्तीं शिमलास्थितिम्
स्वैरवीरुत्समाश्लिष्टवीथिवीरितविह्वलाम्
ग्रामटीगोकुलां क्वापि पश्यामि शिमलातटीम्

* * * * * * *

अद्रिकुक्षिविहारिण्यो हारिण्यः पयसोगृहात्
गिरिगीगानिरताः पश्यैता ग्रामकन्यकाः
क्रयकाष्ठनताःक्वापि स्वल्पकौपीनवाससः
व्रजन्तो विपणिं ग्राम्याः प्रेक्षणीयाः सकौतुकम्

यत्र सानुस्थिता बालाः श्रोणीव्यालम्बिकुन्तलाः
नैदाघातपसेविन्यो मोहयन्ति नृणां मनः
नृत्यन्ति मरुतो यत्र नित्यं मुक्तोष्मकल्मषाः
हिमस्निग्धहृदो हृद्या गौरांगाः सांगनाइव
* * * * * * *

गौरांगीयगुणोपेतां गौरांगीगणसेविताम्
गौरांगगर्वभूयिष्ठां पश्य भोः शिमलाभुवम्
* * * * * * *

सिद्धगन्धर्वसम्भुक्तां स्वर्गश्रीभोगविभ्रमाम्
हृतश्रीधरहृद्देशां पश्यैतां शिमलादिशम्

(१२-३-०३)

पं० श्रीधर पाठक कृत पुस्तकें

---

१ मनोविनोद ... ... ॥)
२ ऊजड़गाम (फिर छप रहा है) ... ...
३ श्रान्तपथिक ... ... ।=)
४ एकान्तवासीयोगी ... ... =)

मिलने का पता—

मैनेजर, इण्डियन प्रेस,

इलाहाबाद।

एकान्तवासी योगी

एक प्रेम कहानी

जिसे हिन्दी और अंगरेज़ी रसिकों के आनन्द के लिये

पण्डित श्रीधरपाठक ने

अंगरेज़ी से खड़ी हिन्दी के पद्य में उल्था किया

"जिहि कर जिहि पर सत्य सनेह
सो तिहि मिलहि न कछु सन्देह"

THE HERMIT.

BY GOLDSMITH

Translated into Hindi Verse

BY

PANDIT SRIDHARA PATHAKA.

राजपूत ऐंग्लो ओरिएंटल प्रेस आगरा।

तीसरीबार १०००

आवेदन।

इस अनुपम सरस और सरल कविता का यथार्थ आदर कविता और अनुवाद कर्म्म का मर्म्म जानने वाले ही कर सक्ते हैं। इसकी मनोहरता और स्वारस्य जन्य आनन्द अन्य अनुभव नहीं करसक्ते। जिन हिन्दी रसिकों ने इसे देखा है प्रसन्न हुए हैं। यद्यपि पं० श्रीधर पाठक जी ने कई एक और ग्रन्थ भी प्रकाश किये हैं परन्तु उनकी अद्वितीय अनुवाद शक्ति और अद्भुत कवित्व शक्ति का परिचय "एकान्तवासी योगी" "ऊजड़ गाम" "श्री हरिश्चन्द्राष्टक" "हिमालय वर्णन" आदि लेखों में विशेष करके मिलता है।

यदि पाठक जी को उत्साह मिलता तो वे अवश्य अनेक उत्तम ग्रन्थ रचते-बड़े खेद का विषय है कि हमारे देश में हिन्दी के सच्चे आदर कर्त्ता बहुत न्यून हैं।

वैकुण्ठ वासी सुप्रसिद्ध फ्रेडरिक पिनकौट साहब ने एक मित्र को लिखाथा कि मैंने अनेक भाषाओं में अनेक अनुवाद देखे हैं। उनमें पं० श्रीधर पाठक के अनुवाद सब से बढ़कर पाये-पश्चिमोत्तर और अवध के विद्या विभाग के डाइरेक्टर की सम्मति में भी पाठक जी के हिन्दी अनुवादों को सर्वोत्तम कहा गया है परन्तु समझ में नहीं आता कि किस कारणसे शिक्षा विभागकी ओरसे उन्हें कभी कुछ सहायता नहीं मिली। अस्तु यदि सर्व साधारण ही पाठकजी के श्रम पर ध्यान देकर सहायता और सन्मान करेंगे तो सन्तोष का विषय होगा।

आगरा
१२ नवं० १८९९

हनुवन्त सिंह रघुवंशी।
(प्रकाशक)

PREFACE

The story presented to the public in these pages is a translation of Goldsmith's well-known poem.—"*The Hermit.*" Two lovers, long separated and lost to each other, quite Providentially come to meet at last never to part again.

The simplicity of style and tone of the original is bewitchingly striking, and that is, perhaps, what has made the love-tale so much admired in the country where it was first produced. But a translation, and that too, like the present, into a language which can but inadequately express English ideas and customs (just the difficulty almost equally experienced by any two alien tongues similarly circumstanced) cannot fairly claim equality with the original either in beauty of style or elegance of expression.

However, all that lay in my small power has been exerted to make the Hindi rendering as satisfactory as possible; the numerous additions to, and the few slight deviations from, the Poet's original ideas, which will be found in the body of the translation, being introduced only to render more interesting and indeed more intelligible to the purely Hindi-knowing reader a foreign tale which, without them, would have but little or no charm for him.

ALLAHABAD:
January, 1886.

S. D. PATHAKA.

एकान्तवासी योगी

"सुनिये झाड़खंड बनवासी, दयाशील ! हे वैरागी !
करके कृपा बतादे मुझको कहां जले है वह आगी १
मैं भटका फिरता हूं बन में, भूल गया हूं राह
तू जो मुझे वहां पहुंचा दे यह गुण होय अथाह

"निपट अकेला भ्रान्तचित्त २ अति थकित, मंदगति फिरताहूं
विकट असीम, महा जङ्गल में परिभ्रमण ३ मैं करता हूं
ज्यों ज्यों आगे धरता हूं पग, अन्त रहित यह देश
बढ़ता ही जाता है प्रतिपद ४ दीर्घ विशेष विशेष"

"वहां न जाना पुत्र ! कहीं" यों बोला सुनकर वैरागी
"करना नहिं विश्वास कभी, वह केवल भ्रमकी है आगी
वहां जो दीख है तुझको, यह उज्ज्वल अधिक प्रकाश
झूठ मूठ बहकाय करेगा निश्चय तेरा नाश

---

१ जिनको रात के समय जंगल में हो कर यात्रा करने का काम पड़ा है उन्होंने दलदली भूमि में अपने मार्गसे कुछ दूर पर आग सी जलती हुई प्रायः अवश्य देखी होगी। भ्रान्त पथिकों को इस आग से बहुत धोखा हो जाता है। वे लोग यह समझकर कि यह उजाला अवश्य किसी गांव या ऐसे स्थान में हो रहा

२ भटका हुआ। ३ चक्कर। ४ पद पद पर

" यहां इसी जंगल में मेरा बना हुआ है दीन कुटीर
जहां सदा गृह रहित पथिक को रहै निवेदित दल,फल,नीर
यद्यपि थोड़ी ही सामग्री, नहीं प्रचुर भण्डार
अर्पित होय भक्ति श्रद्धायुत, यह मेरा परिचार १

" आज रात इससे परदेसी, चल कीजै विश्राम यहीं
जो कुछ वस्तु कुटी में मेरी, करो ग्रहण संकोच नहीं
तृण शय्या और अल्प रसोई, पाओ स्वल्प प्रसाद
पैर पसार करो निद्रा, लो मेरा आशीवाद

"इस पर्वत की रम्य तटी में, मैं स्वच्छन्द विचरता हूं
परमेश्वर की दया देख के, पशुहिंसा से डरता हूं
गिरिवर ऊपरकी हरियाली, झरना जल निर्दोष
कन्द मूल, फल, फूल, इन्हीं से करूं चुधा सन्तोष

" सो हे चतुर सुजान बटोही ! चिन्ता तज तू होय मगन
व्यर्थ जगत् का मोह समझ के, तन मन कर भगवत् अर्पन
यह असार संसार, अपेचा, नरको इसमें अल्प
तिस पर भी वे अल्प अपेचा रहें समय अति स्वल्प"

है जहां कि मनुष्य रहते होंगे उसी की ओर को चले जाते हैं परन्तु ज्योंज्यों आगे बढ़ते हैं यह विश्वास घातक प्रकाश उनसे दूरही दूर हटता जाताहै, यों वे बेचारे बटोही उसका पीछा कर सघन अगम्य दलदलों में फस अपने प्राणों से हाथ धो बैठते हैं। ग्रामीण लोग इस आग से भूतोंका अनुभव करते हैं, परन्तु वास्तव में यह हाइड्रोजन अर्थात् जलकर वायुका, जिसकी जलप्राय प्रदेश में स्वाभाविक अधिकता होती है एक रूप विशेष है। इसी प्रकार की आग से भटक कर इस कहानी का मुग्ध पथिक बनवासी बैरागी से उसका मार्ग पूछ रहा है।

(१) सत्कार।

ओस बूंद ज्यों गिरे व्योम १ से, कोमल निर्मल सुखकारी
त्यों ये मृदुल वचन योगीके, लगे पथिक को दुखहारी
नम्र भाव से कीनी उसने, विनय समेत प्रणाम
चला साथ योगी के हर्षित, जहं उसका विश्राम

बहुत दूर एक झाड़खण्ड में, गुप्त ठौर अज्ञात नितान्त
बनी पर्णशाला योगी को, साधारण अत्यन्त इकान्त
जहां शरण पावें संकटमें, दुखिया दीन अनाथ
मान होय भूले भटके का अति श्रद्धा के साथ

नहीं बड़ा भण्डार मढ़ी में, कीजे जिसकी रखवाली
द्वार एक छोटा सा तृणमय, अभय कुटी शोभाशाली २
इस टट्टी में लगी चटखनी, दी योगी ने खोल
दोनों जीव पधारे भीतर, जिनके चरित अमोल

दिनके श्रम से थका जिस समय, जगत चैन से सोता है
यहां उटज ३ के बीच उस समय, अतिथि समादर होता है
निशा काल, अतिशय अंधियारा, छाय रहा सुनसान
झिल्ली शब्द, शृगाल रुदन ४ बन भूमि, पड़ोस मसान

परम निपुण पण्डित बैरागी झट पट आग जलाता है
सोच भरे पाहुने पथिक के मनको मुदित कराता है
तृणमय एक चटाई, उसपर दिया पथिक बैठाल
अपने लिये मूंज का आसन लिया पास ही डाल

---

१ आकाश २ शोभा से भरी हुई ३ कुटीर ४ गीदड़ का रोना

साग पात मय मृदुल रसोई उसको शीघ्र परसता है
"कुछ संकोच न करना" कहके मुस्क्याता और हंसता है
पूर्व काल की कथा कहानी अद्भुत उसे सुनाय
मन बहलाने लगा पथिक का करके विविध उपाय

धूनी तपै, आगकी ज्वाला, चञ्चल शिखा झलकती है
उड़ता धुआं, शुष्क ईंधन की लकड़ी तथा चटकती है
करै मगन हो मार्जारीसुत १ क्रीड़ा खेल कलोल
अहो परम आनन्द सदन यह सुन्दर दृश्य अमोल !

इस समस्त परिचर्या २ ने नहिं दिया पथिक को कुछ आनंद
प्रबल दुःखसे था उसका मन, व्यथित मलिन पीड़ित और मंद
उदासीन मुख, शोक युक्त, अति पतित पलक भ्रू भाल
भू दृग दृष्टि शिथिल तन दुर्बल, ज्यों नव शुष्क मृणाल

गदगद कंठ हृदय भर आया, ली उसास उसने भारी
नेत्रोंसे फिर अश्रुपात की एक साथ बंध गई धारी
बहे अनर्गल अश्रु धार यह ज्यों पावस का मेह
आर्द्र ३ कपोल, चिबुक, वक्षस्थल, सजल हुई सब देह

चतुर, बहुज्ञ, विज्ञ, वैरागी उसकी दशा निरखता है
कोमल, मृदुल, मिष्ट वाणीसे दुखका हेतु परखता है
इसी व्यथा से है परिपीड़ित, यह वनखण्डी आप
देख चुका है दुःख जगत के, तथा विविध सन्ताप

(१) बिल्ली का बच्चा (२) शिष्टाचार (३) गीले; भीगे हुए

"क्यों यह दुःख तुझे परदेसी!" लगा पूछने वैरागी
"किस कारण से भरा हृदय, क्या व्यथा तेरे मनको लागी?
असौभाग्यवश छूट गया घर, मन्दिर सुख आवास १
जिसके मिलने को तुझको अब, रही न कुछ भी आस

"निज लोगोंसे बिछुर अकेला, उनकी सुध में रोता है
करकर सोच उन्हीं का फिर फिर तन आंसू से धोता है
या मैत्री का लिया बुरा फल, छल से बञ्चित होय
दिया पराये अर्थ व्यर्थ को, सर्वस अपना खोय ?

"नवयौवन के सुधा सलिल में क्या विष विन्दु मिलाया है
अपनी सौख्य बाटिका में क्या कंटक वृक्ष लगाया है
अथवा तेरे अमित दुःख का केवल कारण प्रेम
होना कठिन निवाह जगत में, जिसका दुर्घट नेम ?

"महा तुच्छ सांसारिक सुख जो धनके बलसे मिलता है
काच समान समझिये इसको, पल भरमें सब गलता है
जो इस नश्यमान धन सुखको, खोजे है मति मूढ़
उसको तुल्य धरातल ऊपर, है नहिं कोई कूढ़

"उसी भांति सांसारिक मैत्री, केवल एक कहानी है
नाम मात्र से अधिक आज तक, नहीं किसी ने जानी है
जब तक धन सम्पदा प्रतिष्ठा, अथवा यश विख्याति
तब तक सभी मित्र, शुभचिन्तक, निज कुल, बान्धव ज्ञाति

---

(१) निवास स्थान; घर

"अपना स्वार्थ सिद्ध करने को जगत् मित्र बन जाता है
किन्तु काम पड़ने पर, कोई कभी काम नहिं आता है
भरे बहुत से इस पृथ्वीपर पापी, कुटिल, कृतघ्न १
इसो एक कारण से उस्सर, उठें अनेकों विघ्न

"जो तू प्रेम पन्थ में पड़कर, मनको दुख पहुंचाता है
तो है निपट अजान, अज्ञ, निज जीवन व्यर्थ गंवाता है
कुत्सित २, कुटिल, क्रूर पृथ्वी पर कहां प्रेमका वास
अरे मूर्ख, आकाश पुष्पवत्, झूठी उसकी आस

"जो कुछ प्रेम अंश पृथ्वीपर, जब तब पाया जाता है
सो सब शुद्ध कपोतों ही के कुल में आदर पाता है
धन वैभव आदिक से भी, यह थोथा ३ प्रेम विचार
वृथा मोह अज्ञान जनित, सब तत्व शून्य, निस्सार

"बड़ी लाज है युवा पुरुष, नहिं इसमें तेरी शोभा है
तज तरुणी का ध्यान, मान, मन जिसपर तेरा लोभा है"
इतना कहते ही योगी के, हुआ पथिक कुछ और
लाज सहित संकोच भाव सा आया मुख पर दौर

अति आश्चर्य दृश्य योगी को वहां दृष्टि अब आता है
परम ललित लावण्य रूपनिधि, पथिक प्रगट बन जाता है
ज्यों प्रभात अरुणोदय वेला १ विमल वर्ण आकाश
त्योंही गुप्त बटोही की छवि, क्रम, क्रम हुई प्रकाश

---

१ उपकार न माननेवाले २ खोटी, बुरी ३ सार रहित
१ सूर्य निकलने के पहले का समय जिसे "पौवी फटी" कहते हैं।

नीचे नेत्र, उच्च वक्षस्थल, रूप छटा फैलाता है
शनैः शनैः दर्शक के मन पर, निज अधिकार जमाता है
इस चरित्र से बैरागी को हुआ ज्ञान तत्काल
नहीं पुरुष यह पथिक विलक्षण, किन्तु सुन्दरीबाल !

"क्षमा होय अपराध साधुवर, हे दयालु सद्गुणराशी
भाग्य हीन, एक दीन विरहिनी, है यथार्थ में यह दासी
किया अशुचि आकर मैंने, यह आश्रम परम पुनीत
सिर नवाय, कर जोड़, दुःखिनी बोली बचन विनीत

"शोचनीय मम दशा, कथा मैं कहूं आप सो सुन लीजे
प्रेम व्यथित अबला पर, अपनी दया दृष्टि योगी कीजै
केवल प्रथम प्रेरणा के बश, छोड़ा अपना गेह
धारण किया प्राण पतिके हित, पुरुष वेष निज देह

"टाइन नदीके रम्य तीर पर, भूमि मनोहर हरियाली
लटक रहीं, झुक रहीं, जहां द्रुमलता, छुऐं जलसे डाली
चिपटा हुआ उसीके तटसे, उज्वल उच्च विशाल
शोभित है एक महल बाग़ में, आगे है एक ताल

"उस समय १ बन, भवन, बाग़ का मेरा बाप ही स्वामी था
धर्मशील, सत्कर्म निष्ठ २ वह जमींदार एक नामी था
बड़ा धनाढ्य, उदार, महाशय, दीन दरिद्र सहाय
कृषिकारों का प्रेम पात्र, सबविधि सद्गुण समुदाय

---

१ सन २ अच्छे कामों में जी लगा रहे

"मेरी बाल्य अवस्था ही में, माने किया स्वर्ग प्रस्थान
रही अकेली साथ पिता के, थी मैं उसकी जीवन प्रान
बड़े स्नेह से उसने मुझको पाला पोसा आप
सब कन्याओं को परमेश्वर देवे ऐसा बाप

"दो घंटे तक मुझे नित्य वह श्रम से आप पढ़ाता था
विद्या विषयक विविधि चातुरी, नित्य नई सिखलाता था
करूं कहां तक वर्णन उसकी अतुल दया का भाव
हुआ न होगा किसी पिता का ऐसा मृदुल स्वभाव

"मैं थी एक बालिका, उसके सत्कुल में जीवित थी शेष
इससे स्वत्व १ बापके धनका प्राप्य २ मुझीको था निश्शेष
था यथार्थ में गेह हमारा, सब प्रकार सम्पन्न
ईश्वर तुल्य पिता के सन्मुख, थी मैं पूर्ण प्रसन्न

"हमजोली की सखियों के संग, पढ़ने लिखने का आनन्द
परमप्रीति युत प्यार परस्पर, सब विधि सदा सुखी स्वच्छंद
सुखही सुख में बीता मेरा बचपन का सब काल
और उसी निश्चिन्त दशा में लगी सोलवीं साल

"मुझे पिताकी गोदी मेंसे अलगाने के अभिलाषी
आने लगे अनेक युवक अब, दूर दूर तक के बासी
भांति भांति से करें प्रगट; वह अपने मन का भाव
बार बार दरसाय बुद्धि, विद्या, कुल, शील, स्वभाव

---

१ अधिकार २ मिलने योग्य

"पूर्ण रूप से मोहित मुझ पर अपना चित्त जनाते थे
उपमा सहित रूप मेरे को, विविध बड़ाई गाते थे
नित्य नित्य बहुमूल्य वस्तुओं के नवीन उपहार १
लाकर धरें करें सुश्रूषा २ युवक अनेक प्रकार

"उनमें एक कुमार एडविन, प्रेमी प्रति दिन आता था
वय किशोर, सुन्दर सरूप, मन जिसको देख लुभाता था
वारे था वह मेरे ऊपर, तन मन सर्वस प्रान
किन्तु मनोरथ अपना उसने, कभी प्रकाश किया न

"साधारण अति रहन सहन, मृदुबोल हृदय हरने वाला
मधुर मधुर मुसक्यान मनोहर, मनुज वंश का उजियाला
सभ्य, सुजन, सत्कर्म्म परायण ३ सौम्य, सुशील, सुजान
शुद्धचरित्र, उदार, प्रकृति शुभ, विद्या बुद्धि निधान

"नहीं विभव कुछ धन धरती का, न अधिकार कोई उसको था
गुण ही थे केवल उसका धन, सो धन सारा मुझको था
उस अलभ्य धन के पाने को, थे नहिं मेरे भाग
हा धिक् व्यर्थ प्राणधारण, धिक् जीवनका अनुराग !

" प्राणपियारे की गुण गाथा, साधु, कहां तक मैं गाऊं
गाते गाते चुके नहीं वह,चाहे मैं ही चुक जाऊं
विश्वनिकाई विधि ने उसमें की एकत्र बटोर
बलिहारौं त्रिभुवन धन उसपर वारौं काम करोर

---

१ भेंट, नजर २ खुशामद ३ सत्कर्म निष्ठ

"मूरत उसकी बसी हृदय में अब तक मुझे जिलाती है
फिर भी मिलने की दृढ़ आशा, धीरज अभी बंधाती है
करती हूं दिन रात उसी का आराधन और ध्यान
वोही मेरा इष्टदेव १ है, वोही जीवन प्रान

"जब वह मेरे साथ टहलने शैलतटी २ में जाता था
अपनी अमृतमयी वाणी से प्रेम सुधा बरसाता था
उसके स्वर से होजाता था वनस्थली ३ का ठाम
सौरभ मिलित ४ सुरसरव पूरित ५ सुर कानन ६ सुखधाम

"उसके मनकी सुघराई की उपमा उचित कहां पाऊं
मुकुलितनवलकुसुमकलिका सम ७ कहते फिर फिर सकुचाऊं
यद्यपि ओस विन्दु अति उज्वल, मुक्ता विमल अनूप
किन्तु एक परिमाणुमात्र ८ भी नहिं उसके अनुरूप ९

"तरुपर फूल, कमलपर जल कण १० सुन्दर परम सुहाते हैं
अल्प काल के बीच किन्तु वे कुम्हलाकर मिट जाते हैं
उनको उसमें रही मोहनी ११ पर मुझ को धिक्कार!
केवल एक चणिकता १२ मुझ में थी उनके अनुसार

---

१ सबसे अधिक पूज्य देवता २ पर्वत तटी, घाटी ३ वन भूमि ४ सुगन्ध मिला हुआ ५ मधुर शब्द से भरा हुआ ६ देवताओं का बाग़, नन्दन बन ७ खिलती हुई नई कली के तुल्य ८ तिल भर भी ९ तुल्य १० जल विन्दु ११ छवि, सुन्दरता १२ एकअवस्था में थोड़ी ही देर तक रहने की प्रकृति।

क्योंकि रूप के अहंकार में हुई चपल, चञ्चल और ढीठ
प्रेम परीक्षा करने को मैं उसको लगी दिखाने पीठ
थी यथार्थ में यद्यपि उसपर तन मन से आसक्त
किन्तु बनाय लिया ऊपर से रूखा रूप विरक्त

"पहुंचा उसे खेद इससे अति, हुआ दुखित अत्यन्त उदास
तजदी अपने मनमें उसने मेरे मिलने की सब आस
मैं यह दशा देखने पर भी, ऐसी हुई कठोर
करने लगी अधिक रूखापन दिन दिन उसकी ओर

"होकर निपट निरास, अन्त को चला गया वह बेचारा
अपने उस अनुचित घमण्ड का फल मैंने पाया सारा
एकाकी १ में जाकर उसने तोड़ जगत से नेह
धोकर हाथ प्रीति मेरी से, त्याग दिया निज देह

" किन्तु प्रेम निधि, प्राणनाथ को भूल नहीं मैं जाऊंगी
प्राण दान के द्वारा उसका ऋण मैं आप चुकाऊंगी
उस एकान्त ठौर को मैं अब ढूं ढूं हूं दिन रैन
दुख की आग बुझाय जहां पर दूं इस मन को चैन

" जाकर वहां जगत को मैं भी उसी भांति बिसराऊंगी
देह गेह को देय तिलांजलि, प्रिय से प्रीति निभाऊंगी
मेरे लिये एडविन ने ज्यों किया प्रीति का नेम
त्योंही मैं भी शीघ्र करूंगी परिचित २ अपना प्रेम"

---

१ अकेले में   २ साबित

"कहै नहीं परमेश्वर ऐसा" ! बोला झटपट बैरागी
लिया गले लिपटाय उसे, पर वह क्रोधित होने लागी
था परन्तु यह बन का योगी वही एडविन आप !
आयु १ बितावे था जङ्गल में, भूल जगत सन्ताप

" मेरी जीवन मूर २ प्रानधन अहो अञ्जलैना प्यारी " !
बोला उत्कंठित होकर३ वह, " अहो प्रीति जगसे न्यारी !
"इतने दिन का बिछुरा तेरा वही एडविन आज
मिला प्रिये तुझ को मैं, मेरे हुए सिद्ध सब काज

"धन्यवाद ईश्वर को देकर बार बार बलि बलि जाऊं
तुझको गले लगाकर प्यारी निज जीवनका फल पाऊं
कर दीजे अब सब चिन्ता का इसी घड़ी से त्याग
तू यह अपना पथिक वेश तज, मैं छोड़ूं वैराग

" प्यारी तुझे छोड़ कर मैं अब कभी कहीं नहिं जाऊंगा
तेरी ही सेवा में अपना जीवन शेष बिताऊंगा
गाऊंगा तव नाम अहर्निश ४ पाऊंगा सुखदान
तुही एक मेरा सर्वस धन, तन मन जीवन प्रान

" इस मुहूर्त्त ५ से प्रिये, नहीं अब पलभर भी होंगे न्यारे
जिन विघ्नों से था बिछोह यह, सो अब दूर हुए सारे
यद्यपि भिन्न शरीर हमारे, हृदय प्राण मन एक
परमेश्वर की अतुल कृपा से निभी हमारी टेक"

---

१ अवस्था, उम्र २ जीवन की जड़, संजीविनी ३ उछाह में आकर ४ रात दिन ५ घड़ी से

योगी को अब उस रमणी ने भुज भर किया प्रेम आलिङ्ग
गद गद बोल, वारि पूरित दृग, उमगित मन, पुलकित सब अङ्ग
बार बार आलिङ्गित दोनों, करें प्रेम रस पान
एक एक की ओर निहारें, वारें तन मन प्रान

परम प्रशस्य १ अहो प्रेमी ये, कठिन प्रेम इनने साधा
इस अनन्यता २ सहित धन्य, अपने प्यारे को आराधा ३
प्रिय वियोग परितापित ४ होकर, दिया सभी कुछ त्याग
बन बन फिरना लिया एक ने, दूजेने वैराग

धन्य अंजलैना तेरा व्रत, धन्य ऐडविन का यह नेम !
धन्य धन्य यह मनोदमन ५, और धन्य अटल उनका यह प्रेम
रहो निरन्तर साथ परस्पर, भोगो सुख आनन्द
जुग जुग जियो जुगल जोड़ी, मिल पियो प्रेम मकरन्द ६

---

१ प्रशंसा योग्य २ दूसरे का ध्यान छोड़कर ३ आराधन किया ४ प्यारे के विछोह से दुखित होकर ५ मन का मारना ६ प्रेम रूपी पुष्प का रस।

वनाष्टक

श्रीधर पाठक

वनाष्टक

पं० श्रीधर पाठक रचित

(नवीन सवैया छन्द में)

" जिस छन्द में पठन सौष्ठव हो वही शिष्ट छन्द है "

VAṆASTAKA

BY

PANDIT SRIDHARA PATHAKA.

लक्ष्य

सन् १६०० की "सरस्वती" की ११ संख्या में जो पण्डित श्याम-बिहारी मिश्र ऐम. ए. और पण्डित शुकदेव बिहारी मिश्र बी. ए. कृत पण्डित श्रीधर पाठक की कविता की समालोचना छपी थी उसके दोष-दर्शन खंड में यह दरसाया गया था कि "मनोविनोद के ४०वें पृष्ठ के द्वितीय और तृतीय सवैये के प्रथम चरणों में दो दो लघु अक्षर घटते हैं"

इस पर "पार्यालोचक" ने ३१ दिसम्बर १६०० के भारत मित्र में प्रकाशित "साहित्य समालोचन" शीर्षक लेख में संमति दी थी कि—

पाठक जी के दो सवैयाओं के आद्य चरणों में दो दो वर्णों की न्यूनता जो दिखाई गयी है उसके सम्बन्ध में हमें यह वक्तव्य है कि सवैया के अनेक रूपों में से एक रूप ऐसा भी है वा होना चाहिये कि जिसके प्रथम चरण में शेष चरणों से दो वर्ण कम हों अर्थात् प्रथम सगण के लघुवर्ण लुप्त हों,-जैसा कि "चन्दन के रस भीने हरा * * *" में हैं। इन दो वर्णों के अभाव से सवैया के पठन की सरसता नहीं बिगड़ती-अतः उक्त वर्णों को छोड़ना दूषण नहीं है-परन्तु शेष चरणों के आदि में ऐसा न होना चाहिये, नहीं तो पढ़ने में रुकावट होगी। जिस छन्द में पठन सौष्ठव हो वही शिष्ट छन्द है, पठन सौष्ठव का बिगड़ना ही छन्दोभङ्ग है। क्या यह अवश्य है कि सवैया के चारों चरणों में वर्ण संख्या एक ही हो?

हमारी समझ में सगण गर्भ सवैया में प्रथम चरण यदि ऊपर लिखी हुई गीति का हो तो कोई क्षति नहीं, पर चारों चरणों का एक सा होना भी उत्तम है।

जिस सवैया के प्रत्येक चरण के आदि और अन्त दोनों में दो दो लघु हों वह हमारी समझ में भद्दा और दूषित होता है।

जिस प्रकार के सवैया की निर्दूषणता का पर्यालोचक के उक्त लेख में प्र ति पादन किया गया है उसी प्रकार के सवैया में यह वनाष्टक सहृदयों के सन्मुख पाठक जी सविनय उपस्थित करते हैं।

वनाष्टक

प्रेम की मूल सलौनी लता,
बिलसैं द्रुम अंगन सों लिपटी
नव पल्लव संग प्रसून खिले,
रचैं रङ्ग विरंगित चित्रपटी
बिटपावली वेलैं बनावैं वितान,
अनेकन एक सों एक सटी
बनभूमि की ऐसी छबीली छटा,
अलि के उर अन्तर आनि अटी

चारु हिमाचल आँचल में,
एक साल बिसालन कौ बन है
मृदु मर्मर शील झरैं जल स्रोत हैं,
पर्वत ओट है, निर्जन है
लिपटे हैं लता द्रुम, गान में लीन,
प्रवीन विहंगन कौ गन है
भटक्यौ तहाँ रावरौ भूल्यौ फिरै,
मद बावरौ सौ अलि कौ मन है

कोइल तू कल बोलनी री !
शुक प्यारे हरे पट धारे अहो
भोरी मैना सुनैना रसीलेन की,
सो परेवा परेई के प्यारे अहो
अहो मोरा मचावन शोरा, चकोरा,
पपीया पिया रटवारे अहो
बन के तुम बाँके सदाँ के धनी,
वन जीवन प्रान तिहारे अहो

झिल्ली करैं झनकार कहूँ,
फुसकारत साँपिनें रोस भरी
पट घुग्घू डरावने बोलत बोल,
बिलापैं बिलार घरी पै घरी
कहुं हूकत स्यार हैं, भूकत ल्यार,
लराई लरैं लहि लास मरी
निसि भीसन भावने या मनकी,
बनवास की वासना नास करी

विन्ध्य के वन्य विभाग में एक,
सरोवर स्वच्छ सुहावना है
कमलों से भरा, भ्रमरों से घिरा,
विटपों से सजा, मन भावना है
कल हंस स्वतन्त्र कलोल करैं,
खगवृन्द का बोल लुभावना है
बहै मन्द समीर पराग लिये,
अनुराग हिये हुलसावना है

जेठ की दारुण आतप से,
तप के जगतीतल जावै जला
नभ मंडल छाया मरुस्थल सा,
दल बाँध के अन्धड़ आवै चला
जलहीन जलाशय, व्याकुल हैं
पशुपत्ती, प्रचंड है भानुकला
किसी कानन कुंज के धाम में,
प्यारे, करैं विसराम चलौ तौ भला

काली घटा का घमंड घटा,
नभ मंडल तारकावृन्द खिले
उजियाली निशा, छविशाली दिशा,
अति सोहैं धरातल फूले फले
निखरे सुथरे वन पन्थ खुले,
तरु पल्लव चन्द्रकला से धुले
वन सारदी चन्द्रिका-चादर ओढ़ैं,
लसैं समलंकृत कैसे भले !

भारत में वन ! पावन तूही,
तपस्वियों का तप आश्रम था
जग-तत्व की खोज में लग्न जहाँ,
ऋषियों ने अभग्न किया श्रम था
जब प्राकृत विश्व का विभ्रम और था,
सात्विक जीवन का क्रम था
महिमा वनवास की थी तब और,
प्रभाव पवित्र अनूपम था

२४-१०-११

पं० श्रीधर पाठक की

मनोहर कविता

१—मनोविनोद प्रथम खण्ड (४४ विषय) ... ।=)
२—मनोविनोद द्वितीय खण्ड (३६ विषय) ... ।)
३—मनोविनोद तृतीय खण्ड (२० विषय) ... ।)
४—काश्मीर सुखमा (व्रजभाषा) ... ... ≡)
५—एकान्तवासी योगी (खड़ी बोली) ... ≡)
६—ऊजड़ गाम (व्रजभाषा) ... ... ।)
७—श्रान्त पथिक (खड़ी बोली) ... ... ।)

मिलने का पता—
श्री गिरिधर पाठक
पद्म कोट, लूकरगञ्ज,
प्रयाग (Allahabad.)

सं० श्रीपद्म-कोट प्रबन्ध-माला ११ (इ)
श्री गोपिकागीत
श्रीधर पाठक
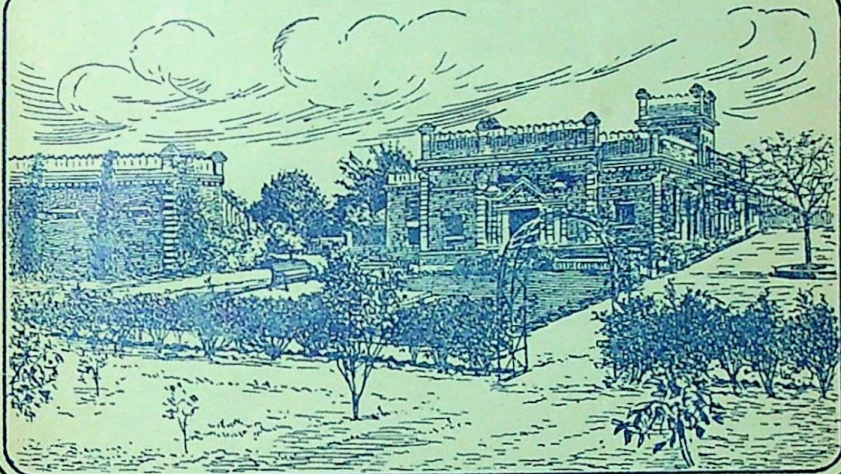
श्री गोपिकागीत

श्रीमद्भागवत १०म स्कंध ३१ अध्याय

समश्लोकी, स्वच्छन्द, छायानुवाद
खड़ी हिन्दी में

पं० श्रीधर पाठक कृत

" तव सुधामयी प्रेम-जीवनी, अघ-निवारिणी, क्लेश-हारिणी
श्रवण-सौख्यदा, विश्व-तारिणी, मुदित गा रहे धीर-अग्रणी "

श्रीपद्मकोट, प्रयागस्थ ग्रन्थकार से प्राप्य

बाबू विश्वम्भरनाथ भार्गव के प्रबन्ध से स्टैंडर्ड प्रेस, 'रामनाथ-भवन'
बाई के बाग, इलाहाबाद में छपी

पाठक्रम

ल ल ल गा ल गा | गा ल गा लगा |

ल = लघु गा = गुरु | = यति

लघु के स्थान में व्यवहृत गुरु
लघुवत् उच्चार्य।

प्रेमोपहार

प्रेमी पाठक,

क्या तुम को बतलाना पड़ेगा कि यह दृश्य, अदृश्य, सारा प्रपञ्च प्रेम-मय है वा प्रेम ही का रूपान्तर है। प्रेम से इसकी उत्पत्ति, प्रेम में स्थिति और प्रेम ही में लय है। प्रेम-भिन्न सब भ्रम है। प्रेम बिना जीवन सम्भव नहीं, प्रेम बिना प्रपञ्च का उद्भव नहीं। प्रेम सत् है, प्रेम चित् है, प्रेम आनन्द है।

प्रेम-रूपिणी गोपिकाओं का प्रेम-निधि कृष्ण की ओर प्रेमोद्गीरण तरलायमान समुद्र की विच्छिन्न तरंग-मालाओं के समान, अपने को अपने से अलगाता हुआ जान अपने में पुनर्विलीयमान होने की प्रवृत्ति है। आप प्रेमी हैं, प्रेम-तत्व के ज्ञाता हैं। अतः इस प्रेमिणी-गण के प्रेमोद्गार को अपने अनन्य-प्रेमी हृदय का प्रेम-हार बनाइये।

श्रीपद्मकोट, प्रयाग
आश्वि० कृ० १०, १९७३

प्रेमी पाठक

समुपस्थिति

(गोलोकवासी पं० बालकृष्ण भट्ट की सेवा में)

स्वर्गीय भट्ट जी !

हम आपके संसर्ग से आप के साथ इतने ढीठ हो गये थे कि जब आप से मिलते थे "प्रोनाम, भट्टोजि", "का हो, भट्ट जी ?" आदि अनेक विनोदात्मक सम्बोधनों से आप का अभिवन्दन करते थे, और आप आशीर्वाद देते थे—"तुमरे मूँड़े आग लगै, निबहुरियऊ* !" और यह स्निग्ध संलाप हमें इतना प्रिय था कि हम उसके पुनः पुनरभिनयन निमित्त आप के निकट दौड़ दौड़ के पहुँचते थे। आप के सत्संग प्रसूत इस प्रकार के अगणित वाग्विनोद इन कानों के गह्वर गह्वरों में पुनः पुनः प्रतिध्वनित होते रहते हैं।

आप का अकृत्रिम स्वभाव-सौष्ठव आप में हमारे अमित-भक्ति-भाव का हेतु था। आप को हम में अकल्पित स्नेह था। एक बार आपने हम को पो० का० में लिखा ही जो था—"स्नेहमूलंहि बन्धनम्"।

आप हमारे प्रातराराध्य तात-पाद के दर्शन से अति प्रफुल्ल हो जाते थे; वह भी आपको देख प्रेम-गद्‌गद हो उठते थे। आप उन्हें पूज्य भाव से देखते थे; वह आपको अन्तः स्नेह से चाहते थे।

---

*मेरी समझ में इसका भाव यह है कि "जनन मरणादि भव-बन्धन से विमुक्त हो" श्री. पा.

हमको आप से अनेक (साहित्यिक, सांसारिक, सात्विक) अद्भुत रहस्यों के पते अवगत हुए थे जो हमारे स्मृति-पटल पर अब तक अटल हैं।

आप हमारी तुकबन्दी को हमेशा पसन्द करते थे और हम अपनी हर एक गढ़न्त सब से पहले आप ही को सुनाते थे। आप से हमें उत्साह मिलता था। आप काव्य-तत्व के सच्चे "जनैया" और वचन-रचना के "चोखे परखैया" थे।

सामाजिक समस्याओं में भी हमारी आप की ख़ूब बनती थी। आपके सिद्धांत प्रबुद्ध, शुद्ध और आप्त-वर्त्माऽविरुद्ध थे। आप न्याय्य आचरण के आदर्श और "स्वधर्मे निधनं श्रेयः" के उदाहरण थे। आप का मस्तिष्क प्रौढ़ था और मेधा कुशाग्र थी।

आप हमारे पितृ-चरणों की भांति सदैव श्रीमद्भागवत का अनुशीलन किया करते थे। और भगवद्भक्ति और स्वदेश-वात्सल्य के अगाध अब्धि में अवगाहित दृष्टि पड़ते थे।

हम आप सदृश सदात्माओं ही को अपनी "आर्य-गीता" में स्थान देने के विचार में थे। परन्तु जिस आर्यता का हम गान करना चाहते थे उसमें बड़ी बड़ी लम्बी पोलें या हमारा सारा स्वाभिमान, हा हन्त! अचानक ही उड्डीयमान हो गया। आपकी कोटि के विषय पर्याप्ततया न मिले। अतः "आर्य-गीता" अब अनिश्चय के अंक में प्रसुप्त है।

न जानें हम "आ० गी०" में क्या लिखते; परन्तु आपके गो-लोक-गमनानन्तर जो हमने एक छप्पय रची थी उसे यहां उपस्थित किये देते हैं, केवल इस कुतूहलवती आशा से कि

आप इस पर अवश्य कहेंगे कि "ई का बकवाद लिखे हो, चलौ भवा, रहै देउ"—

जीवन तव अति धन्य सचहि विधि अहो पूज्यवर
अनुदिन अनुकरनीय चरित पावन प्रशस्य तर
धनि स्वदेश-सुचि-प्रेम नेम प्रिय प्रानहुं सों पर
सात्विक शुद्ध विचार सतत भारतोद्धार-कर
धनि "हिन्दी-दीप" प्रकाशि जग मूरखता-तम-त्रास हर
तव पुन्य नाम प्रिय भट्ट श्रीबालकृष्ण जग में अमर

आप एक बार जब हमारे यहां पधारे थे हमने आप से कहा था कि आपके प्राणाराध्य श्रीमद्भागवत के ३१ वें अध्याय "गोपी-गीत" का हम हिन्दी में समश्लोकी अनुवाद किया चाहते हैं, और पहले श्लोक का अनुवाद आपको सुनाया भी था। वह ब्रजभाषा में था। आप उसे सुनकर बोले कि इसको न करो यह कठिन होगा, परन्तु साथ ही आपने यह भी कहा कि "जो सच मुच करना चाहोगे तो हमें विश्वास है तुम इसे भी कर ही डालोगे"। इमें भी यह कार्य उस समय कुछ दुरूह सा जान पड़ा। उसी क्षण हमारा सदा का साथी आलस्य भी आ उपस्थित हुआ। अनुवाद का विचार, अतः शीघ्र ही शैथिल्य-शय्या-शायी हो गया। परन्तु बरसों बाद वह पुनः स्वयमेव समुज्जागृत हो पड़ा। साथ ही खड़ी हिन्दी सामने खड़ी दृष्टि पड़ी। और उसमें जो प्रथम श्लोक बना वह अच्छा लगा।

भट्टजी, पहले प्रयत्न का पहला श्लोक आपको सुनाया था। और आपने कहा था कि "जो तुम चाहोगे तो इसे करही डालोगे"। सो लीजिये, कर ही डाला। आप इसे वहीं से दिव्य

ओओं से सुनिये। इसमें मूल बहुत छुट गया है, पर शायद कुछ बड़ा बिगाड़ नहीं हुआ, उसकी छाया बहुत कुछ आ गई है। हम अपने पुराने अनिरुद्ध, अपितु सुस्निग्ध अथच सश्रद्ध, वात्सल्य से इसे आपके स्वर्गीय सांनिध्य में निधीयमान करते हैं। ग्रहण कीजियेगा और एक बार फिर वही पुराना आशीर्वाद दीजियेगा।

श्रीपद्मकोट, प्रयाग
आश्वि० कृ० १०, १९७२

स्नेहाऽनुग
श्रीधर—

श्री गोपिकागीत

[१]

व्रज सुखी हुआ तेरे जन्म से अटल इन्दिरा राजती यहां
प्रिय दयानिधे दर्श दे हरे विकल गोपिका ढूंढती तुझे

[२]

शरद के विषैं ताल में खिले वर सरोज की चारु श्री लिये
वरद ! हे तेरे युग्म नैन ये वधिक गोपिका-प्राण के हुए

[३]

गरल-आप से व्याल-ताप से जलद-वात से वज्र-पात से
वृषभ व्योम के दस्यु-घात से अवन है किया तूने सर्वदा

[४]

महर नन्द का पुत्र तू नहीं निखिल सृष्टि का साक्षिरूप है
उदित है हुआ वृष्णि-वंश में व्यथित विश्व के त्राण के लिये

[५]

जिस कराब्ज से धन्य वो किये शरण में तेरे जाय जो पड़े
अनुगृहीत की सिन्धु की सुता कर-सरोज सो दे हमें हरे

[६]

स्वजन-वृन्द के क्लेश हैं हरे सुकृत हैं करें वीरता-भरे
हम प्रभो ! तेरी प्रेम-किंकरी वदन-चन्द्र का दर्श चारु दे

[७]

प्रणत-वर्ग के पाप हैं हरे सुरभि-यूथ के साथ हैं फिरे
उरग-शीश पै धाय जो चढ़े उरज पै चढ़ा श्री पदाब्ज वे

[८]

हृदय हैं हरे मिष्ट बोल से निपट रावरे नेह में फसे
हम अहो तेरी मुग्ध दासियां अधर का हमें सीधु पान दे

[९]

तव सुधामयी प्रेम-जीवनी अघ-निवारिणी क्लेश-हारिणी
श्रवण-सौख्यदा विश्व-तारिणी मुदित गारहे धीर-अग्रणी

[१०]

हसन वो तेरी चारुता-भरी रमण-कुंज की केलि-माधुरी
बिजन में दिये बैन त्यों छली हृदय को करैं क्षुब्ध हैं सभी

[११]

पशु-समूह के संग में फिरे ललित कंज से पांव ये तेरे
शिल तृणादि से विद्ध देख के बिकलता हमें व्यापती बड़ी

[१२]

दिन छिपे तेरे केश-पाश ये सुरभि-यूथ की रेणु से भरे
मुख-सरोज पै शोभते पड़े मदन की व्यथा हैं बढ़ा रहे

[१३]

प्रणत-वृन्द की कामना-भरे निखिल विश्व की संपदा-भरे
हरण द्वन्द्व के सिन्धुजा-भजे धर उरोज पै पाद-पद्म वे

[१४]

सुरत-वर्द्धिनी शोक-हारिणी इतर वृत्ति की लुप्त-कारिणी
मुरलि-चूषिता मोह-वारिणी अधर की सुधा-सीधु दे सखे

[१५]

विपिन में फिरै जाय तू सखे दिन नहीं कटै बे तुझे लखे
अलक की छटा रूप माधुरी तृषित ही रहैं नैन देखते

[१६]

पति सुतादि की लाज छांड़ के तव समीप हैं आगयीं छली
मधुर गीत से मोह के हमें उचित है अहो त्यागना नहीं !

[१७]

निभृत में कहे प्रेम-बैन वे मदन की सुधा-सींधु में सने
बदन की विभा नैन-बान ये हृदय में स्पृहा हैं उठा रहे

[१८]

व्रज-प्रदेश में व्यक्त रूप ले दुरित लोक के दूर हैं करे
विरह-ताप की शान्त-कारिणी अलभ औषधी दे हमें हरे

[१६]

हे कृष्ण ! कोमल पदाम्बुज ये तुम्हारे
जो बार बार हमने निज वक्ष धारे
इन्से फिरो हो बन में जब प्राण-प्यारे
पीड़ा उठै है उर में अति ही हमारे

जन्माष्टमी. १६७३

कोष

अग्रणी = अगुआ

अवन = रक्षा

इन्दिरा = लक्ष्मी

उरग-शीश = कालिय-फण

उरज
उरोज } = वक्ष

कराब्ज = कर कमल

गरल-आप = काली-दह

चूषिता = चूसी हुई

जलद-वात = इन्द्रकोप

दुरित = क्लेश; पाप

धीर = विद्वान; विबुध

निखिल = सकल

निभृत = एकांत

पदाब्ज = चरण कमल

पाद-पद्म = चरण कमल

महर नन्द = नन्द महर; यशोदा

वरद = वर देनेवाला; प्रभु

विजन = एकांत

विद्ध = छिदे हुए

विपिन = बन, जंगल

वृषभ व्योम के
दस्यु घात से } वृषभासुर और व्योमासुर के आक्रमण से

वृष्णि-वंश = यदुवंश

व्यक्त = प्रकट

व्याल-ताप = अघासुर की दुष्टता

सिन्धु की सुता = लक्ष्मी

सिन्धुजा-भजे = लक्ष्मी से सेवित

सीधु = रस

सुरत = विलास

स्पृहा = उत्कट अभिलाषा; लालसा

श्रीपद्मकोट-प्रबन्धमाला

पं० श्रीधर पाठक के सुललित पद्य और गद्य ग्रन्थ

गवन्मेंन्ट, राजा महाराजा और पब्लिक से प्रशंसित और पोषित

पद्य

१—आराध्यशोकाञ्जलिः-(सचित्र) ...	०	६	०
२—श्रीगोखलेप्रशस्तिः-(सचित्र) ...	०	२	०
३—एकान्तवासी योगी—[Goldsmith के *Hermit* का अद्वितीय अनुवाद] ..	०	३	०
४—ऊजड़ गाम-[Goldsmith के *Deserted Village* का अनुपम अनुवाद] सचित्र ३ य संस्करण	०	६	०
५—श्रान्त पथिक—[Goldsmith के *Traveller* का पंक्ति प्रति पंक्ति सरस अनुवाद] अद्वितीय खड़ी हिन्दी पद्य ...	०	४	०
६—जगत सचाई सार—(जगत मिथ्या नहीं है)	०	१	०
७—काश्मीर सुखमा—काश्मीर का वर्णन। अत्यन्त मधुर कविता।	०	२	०
१०—श्रीजार्ज-बन्दना—राजेश्वर की सच्ची प्रशंसा	०	१	०
११ (इ) श्री गोपिकागीत	०	२	०
१४—श्रीगोखले-गुणाष्टक—सचित्र ...	०	२	०
१६—देहरादून—बिलकुल नई चीज़ (३ चित्र)	०	६	०

गद्य

१७—तिलिस्समाती मुँदरी—(कश्मीर के राजा की लड़की) अनोखी कहानी (सचित्र)...	०	४	०

मिलने का पता—

श्री गिरिधर पाठक

श्री पद्मकोट, लूकरगंज

इलाहाबाद।